National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 675-678

समकालीन कविता के अप्रतिम हस्ताक्षर 'लीलाधर जगूड़ी'

प्रशान्त सिंह
वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

सन् 1960 के बाद की हिन्दी कविता के आन्दोलनात्मक तेवरों का हुल्लड़–भरा दौर जब थमता है और मनुष्य तथा समाज की दुःख–तकलीफों से जुड़ने वाली गहरी सामाजिकता कविता में लौटती है और एक राजनीतिक समझ कविता के परिप्रेक्ष्य में रहती है तो उस समय कविता में लौटती है और एक राजनीतिक समझ कविता के परिप्रेक्ष्य में रहती है तो उस समय कविताा के साथ 'समकालीनता' का यह प्रत्यय जोड़ा गया। तब यह माना गया कि इस समय की कविता सच्चे अर्थों में 'समकालीन है। इस अर्थ व सन्दर्भ में विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का कथन है– ''समकालीन कविता अपने समय के मुख्य अन्तर्विरोधों और द्वन्दों की कविता है। समकालीन कविता में 'जो हो रहा है' (Becoming) का सीधा खुल सा है। इसे पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता है, क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते–गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है। आज की कविता में काल अपने गत्यात्मक रूप में है। ठहरे हुए 'क्षण' या क्षणांश के रूप में नहीं। यह 'कालक्षण' की कविता नहीं, काल–प्रवाह की, आघात और विस्फोट की कविता है।''

'समसामयिक' की अवधारणा से अलग करते हुए डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव 'समकालीन' शब्द को एक भिन्न और व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हैं– 'समकालीन शब्द' में एक सहज अतिव्याप्ति हे, पर दूसरी ओर इसमें एक निश्चित ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करने की क्षमता भी है। 'समकालीन कविता' कहते ही हमारे समय के महत्त्वपूर्ण सरोकारों, सवालों से ठकराती एक विशेष रूप और गुणधर्म वाली कविता का चित्र हामरे सामने आ जाता है।

लीलाघर जगूड़ी अपनी पूरी संवेदनात्मक आकुलता के साथ मनुष्य को मनुष्य होने तथा मनुष्यता को बचने के आग्रह को ही समकालीनता से जोड़ते हैं– ''समकालीनता की तलाश एक गाये जा चुके राग में नहीं हो पायेगी। ऐ नये ढंग का, एक नये रंग का राग बनेगा। इस राग में जितना विराग होगा उतना अनुराग भी होगा। जितनी अटपटी शब्द–संगति होगी उतनी ही तल्खी होगी, बेचैनी और उतावलापन होगा। जिस तरह धर्म को जीवन के सिद्धान्त के रूप में विज्ञान ही बचा सकेगा, उसी तरह कविता को भी मनुष्य का मनुष्य होना ही बचा पायेगा।'' 'समकालीनता' वह समग्र चेतना मानी जाती है जो सामयिक सन्दर्भों, दबावों, तकाजों के तहत एक विशिष्ट स्वरूप धारण करती है। समकालीनता अपने देश–काल के विशिष्ट सन्दर्भों से ही स्वरूप ग्रहण करती है। ''समकालीनता अंग्रेजी भाषा के Contemporary का हिन्दी पर्याय है। ''इसमें एक ही समय में रहने या होने का अर्थ निहित है। इसके पर्याय रूप में समसामयिकता का प्रयोग भी होता है।''[1]

उत्तर छायावादी भँवर से कविता को निकाल कर उसे समकालीन परिवेश के लिए प्रासंगिक बनाने का श्रेय सामान्यतः 'तार सप्तक' को जाता है– इसकी शुरूआत 1938 के आसपास हो चुकी थी। समकालीन संकट की स्वीकृति, मानसिक विभाजन को प्रतिरोध तथा यथार्थग्राही, यथातथ्य काव्यभाषा का निर्माण तीनों कार्य 1938 के आसपास प्रारम्भ हो गए थे।''[2] समकालीन कविता का सर्वप्रमुख नारा है– व्यवस्था का विरोध। अशोक बाजपेयी यह मानते है कि– ''समकालीन चच्चाई, राजनीतिक कर्म, इच्छा तथ्यों से उभरी हुई सच्चाई है और बिना रानीति से दो–चार हुए उसका आक्षात्कार अधूरा और अप्रमाणिक रहेगा। राजनीति से सुरक्षित संसार इच्छित संसार है, अतीतजीवी का भविष्यत् संसार है समकालीन संसार नहीं।'' रधुवीर सहाय के अनुसार– ''मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है, भविष्य के प्रति, नियति के प्रति नहीं। जिस किसी परिवेश में कवि का अनुभव उससे काव्य–सृष्टि कराता हे, उसमें वर्तमान मानव–परिस्थिति को ज्यों–त्यों स्वीकार कर लेना और उससे अपने को बाहर रखकर उसका समर्थन, वर्णन आलेखन कर देना भी कविता हो सकती है। किन्तु वह सृष्टा का काम नहीं है।''[3] अजित कुमार ने ''अकविता को ही समकालीन माना है जिसमें वर्तमान युगबोध की अभिव्यक्ति हुई हो।''[4] डॉ0 शुकदेव सिंह की दृष्टि में समकालीन कविता कीस सबसे बड़ी पहचान यह है कि वह आक्रामक है। ''आज के लेखन ने कविता को क्रांति के लिए बेहतर हथियार के रू‍प में चुना है।''[5] डॉ0 नरेन्द्र मोहन ने इस सन्दर्भ में विचार करते हुए लिखा–''समकालीन कविता केवल परिवेश–परिदृश्य चित्रण नहीं है। केवल परिवेशगत यथार्थ के चित्रण या बयान से जैसे कविता नहीं बनती, वैसे ही मानसिक वृत्तियों के विवरण देने से भी कविता नहीं बनती।''[6] डॉ0 श्याम परमार के अनुसार ''समकालीन कविता का एक बड़ा वर्ग कविता के स्वीकृत मूल्यें के खिलाफ नजर आता हे। अगर श्री गिरिजाकुमार माथुर के शब्दों में कहूँ तो समकालीन कविता 'अस्वीकृति का नवोन्मेष' है–'विरोध का रेनसाँ है।' समकालीन हिन्दी कविता की दिशाएँ चाहे कितनी व्याप्त हो मगर स्थूल रूप से उनकी प्रवृत्तियाँ कविता शब्द के बहुत से स्वीकृत सन्दर्भों की सीमाओं के बाहर नजर आती हैं।''[7]

समकालीनता एक काल के साथ–साथ जीना नहीं है। समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों से भीक केन्द्रीय महत्त्व रखने वाली समस्याओं के समझ से उत्पन्न होती है। डॉ0 विश्वम्भरनाथ उपाध्याय की दृष्टि में– ''समकालीन कविता आदर्शों को बिल्कुल नकाराती है, वह जीवन और समाज के यथार्थ अस्वरूपों को व्यंजित करने में विश्वास रखती है। आज की विसंगतियों को ज्यों–का–त्यों वर्णित करना उसका लक्ष्य है।''

''समकालीन कविता मूलतः राजनीतिक है, यद्यपि युवा कवियों की राजनीति को 'प्रति–राजनीति' कहकर उनका विरोध किया गया है।''[8] डॉ0 जगदीश नारायण श्रीवास्तव का मत है–वस्तुतः समकालीन कविता के बीज हमें 60 से काफी पहले निराला की

कविताओं में मिलने लगते हैं।''[9] निर्मल वर्मा मानते है कि समकालीन शब्द आज काफी विकृत हो चुका है, और प्रायः उन सब लेखकों के लिए यह प्रयुक्त होता है जो आज जीवित हैं और लिख रहें हैं।''[10]

ललीधर जगूड़ी वामपंथी विचारधारा के कवि हैं। प्रायः कहा जाता है कि उनकी आरम्भिक कवितओं पर धूमिल की मुहावरे बाजी और खिलदंड़ापन का प्रभाव है। किन्तु दोनों कवि लगभग एक साथ लिख रहे थे। जिस वर्ष धूमिल का 'संसद से सड़क तक' प्रकाशित हुआ, उसी वर्ष (1972) में जगूड़ी का भी दूसरा संग्रह 'नाटक जारी है' छपा।

लीलाधर जगूड़ी और धूमिल अकविता और आधुनिकतावाद के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर के रूप में सामने आए। जगूड़ी की कविताएँ अपने समकालीन सन्दर्भों का रचनात्मक आक्रोश बनकर सामने आईं। लेकिन ''मूर्तिभंजन के आवेश में अर्थ की सघनता के स्थान पर विदग्धता का विकास अधिक हुआ।''[11] समकालीन कविता की एक बड़ी उपलब्धि–बहुप्रयुक्त शब्दों के नए विन्यास और रूपान्तरण जैसे–'दर्शक दीर्घा से', 'संसद से सड़क तक,' 'आत्महत्या के विरुद्ध,' 'निषेध', 'देहात से हटकर,' 'संक्रांत,' 'इतिहास का दर्द' की भाँति जगूड़ी के काव्य संग्रह 'नाटक जारी है,' 'इस यात्रा में' (1974), 'रात अब भी मौजूद है' (1976), 'बची हुई पृथवी' (1977), 'घबराए हुए शब्द (1981), 'भय भी शक्ति देता है।' (1991), 'अनुभव के आकाश में चाँद (1994), ईश्वर की अध्यक्षता में' (1999), आदि–संग्रह की कविताएँ समकालीन कविता के अमिट हस्ताक्षर के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित करने में सफल रहीं। जगूड़ी समकालीन कविता के अमिट हस्ताक्षर के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित करने में सफल रहीं। जगूड़ी समकालीन कविता की पहचान बनकर उभरे। आठवें दशक के महत्वपूर्ण कवियों में उनकी गिनती होने लगी। देखते ही देखते उन्हें 'धूमिल' उत्तराधिकारी माना जाने लगा।

जगूड़ी अपने समय की प्रायः सभी प्रकार की समस्याओं से अवगत रहे हैं। मध्यवर्गीय चेतना से सम्बद्ध होने के कारण रूढ़ियों,अन्ध श्रद्धाओं, लचर मान्यताओं और अवैाानिक अवधारणाओं को जगूड़ी बैसाखियों वाली इमारत मानते रहें हैं। अगतिशील, प्रतिक्रियावादी और जड़ व्यवस्था के खिलाफ उनका मन आक्रोश से भरा है। जगूड़ी राजनैतिक नंगेपन, स्वार्थान्धता, मौकापरस्ती, साम्प्रदायिकता और गिरते हुए नैतिक–चरित्र को देखकर एक दबी–दबी सी जुगुप्सा के भी शिकार हैं। यही कारण है कि स्त्री के प्रति उनका दृष्टिकोण धूमिल से अलग नहीं। भेड़िए' दोनों जगह हैं–समझौता का रास्ता अपनाना उनकी नियति नहीं। वह व्यवस्था में रहकर भी व्यवस्था को नग्न कर जाते हैं उनके काव्य में बड़वोलेपन की अपेक्षा सपाटबयानी पर जोर है। उनकी यही विशेषता उन्हें समकालीन कविता का प्रमुख हस्ताक्षर बनाती है। समकालीन कविता का दृश्यालेख उनके अभाव में अपूर्ण ही नहीं अविश्वसनीय भी लगेग। इसलिए जगूड़ी को समकालीन कविता का अपरिहार्य हस्ताक्षर और धूमिल का वास्तविक उत्तराधिकारी कहा जा सकता है। ''लीलाधर जगूड़ी अकिवता के दौर से उभरे हमलावर युवा कविता के बहुचर्चित लेखक है।''[12]

जहाँ यह सच है कि हमारे जमाने की सच्चाई, हिंसक, आक्रामक, उग्र, आक्रोश भरी, आग्नये और लल्खता से परिपूर्ण है वहीं यह भी स चहे कि अकविता के कवियों का मुहावरा उग्रता से परिपूर्ण है, परन्तु वह न तो रोमानी–शून्य है और न उसमें वैसी नाटकीयता का समावेश है जैसी होनी चाहिए। यह एक सुखद संयोग ही है और न उसमें वैसी नाटकीयता का समावेश है जैसी होनी चाहिए। यह एक सुखद संयोग ही हे कि अकविता के परिवेष से आए जगूड़ी, जगदीश चतुर्वेदी, गंगा प्रसाद विमल और श्याम परमार की तरह बड़बोली आक्रामक मुद्राओं के बावजूद तनावहीन नहीं रहे हैं। अपने समकालीन कवि धूमिल जैसी आग एवं चुभता हुआ व्यंग्य उनकी कवितओं में भले ही न हो, लेकिन यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि उनकी कविताएँ अग्निधर्मा नहीं हैं।

जगूड़ी की कविता संघर्ष की कविता है, विपक्ष की कविता है, विरोध की कविता है, और है विद्रोह की कविता। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण है कि जगूड़ी कवि की समूची जिंदगी को एक वर्कशॉप के समान समझते हैं– ''एक ऐसा वर्कशॉप, जिसकी न कोई दीवार है, न कोई छत। जिसकी जमीन भी केवल वहीं जमीन है जिसे लोग अपने नाम मंजूर कराए रहते हैं।''[13] जगूड़ी कवि की जिन्दगी को वर्कशॉप क्यों समझते हैं, इसकाा स्पष्टीकरण उन्होंने स्वयं किया है, डन्हीं के शब्दों में– ''मैं समझता हूँ कवि होना–लोहार, तमोटे कारखाने के कारीगर या किसी भी वर्कशॉप में काम करने वाले कुशल शिल्पी से ज्यादा। श्रेष्ठ नहीं हैं, पर इतना फर्क अवश्य है कि कवि स्वयं किया है, उन्हीं के शब्दों में– ''मैं समझता हूँ कवि होना–लोहार, तमोटे कारखाने के कारीगर या किसी भी वर्कशॉप में काम करने वाले कुशल शिल्पी से ज्यादा श्रेष्ठ नहीं हैं, पर इतना फर्क अवश्य है कि कवि स्वयं के अनुभवों पर सामाजिक दबावों से प्रशिक्षित होता है जबकि कारीगर की एक निश्चित ट्रेनिंग होती है, कारीगर एक साँचा बनाता हे जबकि कवि तोड़ता है। कारीगर धातु के रद्दी–से–रद्दी टुकड़े का भी बढ़िया से बढ़िया कुछ बनाना चाहता है तभी चीजों की आकृतियाँ बदल जाती हैं। इसी तरह कवि भी रद्दी–से–रद्दी शब्दों को उनके प्रचलित अर्थों से मुक्ति देकर उनके अर्थपूर्ण चेहरों को नए सिरे से गढ़ता है।''[14]

जगूड़ी के उपर्युक्त उद्धरण में जो रेखांकित करने योग्य बात है वह है कवि अपने भोगे हुए यथार्थ और अनुभव के एहसास को वाणी प्रदान करता है। साठोत्तरी कवि लीलाधर जगूड़ी की कविताओं में संवेदना अपने विविध आयामों के साथ उपस्थित है, उनके काव्य में आज के मध्यवित्तीय परिवार के संघर्षरत आदमी का दर्द मिलता है। उनके काव्य में अतृप्ति, अभाव, अलगाव, अकेलान और सतही जिन्दगी जिये जाने का तल्ख एहसास प्राप्त होता है।

साठोत्तरी कवियों में लीलाधर जगूड़ी का काव्य एक सतत प्रगतिशील, प्रखर–चिंतक, निर्विघ्न साधक तथा डूबे हुए दार्शनिक के काव्य के रूप में सामने आता है। अतिरंजना, आवेश और आवेग सभी प्रकार की मुक्ति के लिए यथायोग्य प्रसंग उनके काव्य में समाहित हैं। अपनी रचनाओं में वे कहीं भी यतिभंग की स्थिति में नहीं आए हैं। इसी कारण ऊर्जा एवं उष्मा से उनका अलगाव कहीं भी नहीं हुआ है।

जगूड़ी ने अपने काव्य के माध्यम से अपने समय और समाज की धड़कन कोा पकड़ने एवं मूर्त करने का प्रयास किया है। हाँ, प्रारिम्भक दौर में उनका सारा ध्यान नयी कविता की प्रतिक्रिया में उलझा था। इसलिए वे कविताएँ जहाँ कमजोर हैं वहीं बड़बोलेपन का शिकार भी। कवि के प्रयत्न को सफलता और असफलता के मानकों द्वारा मापा जाना कविता के लिए उपादेय नहीं है। असफल होने से प्रयत्न की महत्ता कम नहीं हो जाती। जगूड़ी प्रयत्नरत हैं, वे अपनी असफलताओं से सीखते हैं। इसी का परिणाम है, 'भय भी शक्ति देता है की कविताएँ –

''अपनी छोटी और अंतिम कविता के लिए
मुझमें जो थोड़ा सा रक्त शेष है
मैं कोशिश करूँगा
वह दौड़कर
शब्द के उस अंग को जीवित कर दे
जो भाषा की हवा से मर गया है

और जिसके कुलबुलाते ही लगे कि ये जिंदगी थी
अपने समय के कर्कश वार्तालाप के साथ
और लगे कि कविता केलव कविता नहीं
एक इच्छा थी
एक ऐसी इच्छा जिसमें पानी हर तरफ से
कितनो पर तो ला देता है
मगर छोड़ता नहीं है।''[15]

अपने समकालीन अन्य कवियों की अपेक्षा जगूड़ी का काव्य–संसार ज्यादा विस्तार प्राप्त करता है। उनकी कविता में भाषा, कविता, राजनीति, आदमी, जंगल, पेड़, नदी, पहाड़, घास, सड़क, मैदान, शहर, घर, विस्तार, विद्रोह, संशय, डर, अकेलापन, रंग आदि शब्द अपने परिवेश के साथ–साथ वर्तमान जीवन को मूर्त करने का प्रयास करते नजर आते हैं। यह सच है कि एक समय काव्य में राजनीति, प्रजातंत्र, आजादी जैसे शब्द रूढ़ हो गए थे, इसमें जगूड़ी का भी योगदान है।

जगूड़ी की भाषा एक ऐसी आश्वस्त, तनी हुई और अपनी ताकत के एहसास से बहुत ज्यादा 'कांशस' भाषा है जो अक्सर चीजों और कविता के बीच इतराती हुई आती है। इसलिए वह बहुत अधिक वाचाल भी है। उनके सारे प्रतीक और बिम्ब व्यवस्था अनुभव के खुरदुरेपन, हिंसात्मक स्मृतियों और विडम्बनाओं के घात–प्रतिघात से कटकर एक स्वायत्त कलावादिता का स्वाद पाठक को देते हैं। एक कविता का यह अंश टिप्पणी करता प्रतीत होता है–

''मेरे पास कान हैं, आंखें हैं, दुनिया में सबसे वाचाल
सबसे अच्छी और रसीली जीभ हैं
मुंह है। मैं अब स्वयं चेहरा हूँ।''[16]

लीलाधर जगूड़ी की कविता की भाषिक संरचना का अपना एक विशेष महत्व है। अपनी कविता के भावों को आम सामाजिक तक पहुँचाने का उनका एक अनूठा अन्दाज है। 'चालाकी की शुरूआत' में कवि सामान्य आदमी की बोल–चाल की भाषा को कविता की भाषा में ढालते हुए कहता है–

''अरे गोबर पत्थन
ये बच्चे
ही–ही–ही, बेचारे बच्चे
बेफिकर
बेचारे बच्चे
असल उम्मर तो यह है पत्थन।''[17]

इस उदाहरण में पत्थन, गोबर, ही–ही–ही, उम्मर, शब्द आम लोगों के बोलचाल के शब्द हैं तथा ही–ही–ही बच्चों की स्वाभाविक हँसी है, जिसे कवि कविता के साँचे में ढालकर जन सामान्य के लिए ग्राह्य बना देते हैं।

कवि जगूड़ी, कविता की भाषा को एक नया संस्कार देते हैं तथा इस संस्कारित भाषा के माध्यम से मानवीय संवेदना को व्यक्ति करते हुए कहते हैं–

''खाने की ज़हर और रहने को शहर
मिलने के बाद तुमसे यहाँ
ज्यादा नहीं रहा जायेगा
कोई भी दिन तुम्हें उजाले से पीटता हुआ।
तुम्हारी व्याकुलता को भीड़ में कर देगा
जहाँ कोई सम्बन्ध भी
कोई कुछ भी
तुम्हें तुम्हारा परिचय नहीं देगा।''[16]

यह जन सामान्य की भाषा लीलाधर जगूड़ी की महान उपलब्धि मानी जा सकती है। कविता की भाषा एक ऐसा विलयन है जिसमें सभी भाषिक तत्त्व अपने अलग–अलग गुणों को खोकर सदैव नवीन कला का निर्माण करते हैं। इस तरह, कवि जगूड़ी में निजी पहचान बनाए रखने की एक तरह की छटपटाहट है जो नके समस्त कविता–संग्रहों में देखी जा सकती है। उनकी अनेक कविताओं में निजता, तीव्र संवेदनशीलता और मौलिक अनुभूति प्रायः दृष्टिगोचर होती है। उनकी प्रत्येक कविता में विषय के अनुकूल शब्दों की संगति है। कवि जगूड़ी के काव्य में पैनी संवेदनात्मक भाषा में व्यक्त परिस्थितियाँ नितान्त निजी होते हुए भी मानवीय सन्दर्भों को समेटे हुए हैं। अपनी 'प्रोमान्तरण' शीर्षक कविता में जगूड़ी मानवीय यथार्थ को उजागर करते है–

''मैं तुम्हारे शरीर में
वे सार्वजनिक उजाड़ खोज रहा हूँ
जहाँ शाम के खाली हिस्से को सहलाते हुए लोग
पैर के अँगूठे से छोटे–छोटे गड्ड़े खोदते हैं
और उन्हें बीड़ी की राख से भरत हुए
उनमें बातें लगाते हैं।''[19]

कवि जुगड़ी, मानवीय स्थिति में जुड़ने तथा यथार्थ को पकड़ने का प्रयास करते हैं। इस उदाहरण में भाषा का सहज प्रयोग और अनुभव की भाषा का सबका भाषा में रूपान्तरण किया है। साठोत्तरकालीन परिदृश्य का साक्षात्कार है–

''आदमियों के जंगलों में छिपे हुए भेड़िए
पिछले पंजों से मिट्टी खोद रहे हैं
और हिलती फिर रही हैं
लोमड़ी कुण्ठाओं को रोयेदार पूँछें।''[20]

कवि जगूड़ी कविता की भाषा के लिए हर स्तर पर जूझते हैं वे सार्थक शब्दों के प्रयोग से कविता की वास्तविक शक्ति को ही उभारते नहीं बल्कि कविता को अपने सोचे–समझे चरित्र के अनुसार ढालते भी हैं। कवि जगूड़ी भाषा शिल्प के पुराने साँचे को तोड़कर, नये साँचे में शब्दों को ढालकर, नयी भाषा बनाते है–

''गर्भवती भाषा फिर छड़ी हो गई।''[21]
''भाषा में अपने होने का
स्वाद चख लेना चाहिए।''[22]
''मेरी भाषा के धक्के ने कहाँ फेंका।''[23]

वास्तव में, ये समस्त भाषिकचिन्ताएँ एक सजग कवि का आत्मविश्लेषण तथा आत्मसंशोधन, की दिशा में नयी भाषा को बुनने का अथक प्रयास है। कवि जगूड़ी के उद्धरण में भाषाई सजगता, आत्मसंघर्ष और वैचारिक संलग्नता तीनों ही एक साथ उभरकर सामने आते हैं।

इस तरह, कवि जगूड़ी साठोत्तरकाल के मानव को कहीं भी जूझते हुए अकेला नहीं छोड़ते बल्कि उसके प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं–

''मेरी भाषा
पंख फड़फड़ायेगी
जब अत्याचार होगा
मेरी भाषा पंख फड़फड़ायेगी।''[24]

वास्तव में, कवि साठोत्तरकालीन सामान्रू आदमी पर होने वाले अत्याचार, दमनचक्र तथा शोषण–उत्पीड़न को देखकर मूक नहीं रहता बल्कि उन्हें इनके विरुद्ध लड़ने की शक्ति भी प्रदान करता है। उपर्युक्त पंक्तियों में भाषा का फड़फड़ाना कवि की संवेदनशीलता का ही द्योतक है।

लीलाधर जगूड़ी अकविता और युवा कविता के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर इसलिए बन सके कि कविता की एक बड़ी उपलब्धि–बहुप्रयुक्त शब्दों के नये विन्यास और रूपान्तरण–जैसे 'दर्शकदीर्घा' से, 'संसद से सड़क तक,' 'आत्महत्या के विरुद्ध,' 'निषेध,' 'देहता से हटकर,' संक्रात,' 'इतिहास,' का दर्द' की भाँति जगूड़ी के काव्य–संग्रह 'नाटक जारी है,' 'रात अब भी मौजूद है,' 'बची हुई पृथ्वी,' 'घबराये हुए शब्द' भी समकालीन कविता की एक पहचान बनर उभरे। आठवों दशक के महत्त्वपूर्ण कवियों में उनकी गिनती की जाने लगीं देखते ही देखते उन्हें 'धूमिल' का उत्तरााधिकारी माना जाने लगा। वे 'धूमिल' के बाद युवा कविता के सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि कवि सिद्ध हुए। इसलिए यह माना गया कि, ''उनके रचना संसार का विश्लेषण किया जाए तो आज की कविता के परिवेश और संगठनों का एक अधिक प्रामाणिक साक्ष्य मिल सकता है।''[26]

जगूड़ी अपने समय की प्रायः सभी प्रकार की समस्याओं से परिचित रहे हैं। मध्यवर्गीय चेतना से सम्बद्ध होने के कारण रूढ़ियों, अन्ध श्रद्धाओं, लचर मान्यताओं, वैज्ञानिक अवधारणाओं को वे बैसाखियों वाली इमारत मानते रहें हैं। अगतिशील, प्रतिक्रियादी और जड़ व्यवस्था के खिलाफ उनके मन में आक्रोश है। और राजनैतिक नंगेपन, स्वार्थान्धता, मौकापरस्ती, साम्प्रदायिकता और गिरते हुए नैतिक चरित्र को देखकर एक दबी–दबी जुगुप्सा के भी वे शिकार हैं। बड़बोलेपन के खिलाफ सपाटबयानी में अपने समाज के साक्ष्य बनकर सचमुच लीलाधर जगूड़ी समकालीन कविता के अमिट हस्ताक्षर बनकर उभर सकने में सफल रहे हैं। वे सातवें दशक के रूप में उभरे और धीरे–धीरे विद्रोही कविता के अच्छे कवि के रूप सामने आये हैं। समकालीन कविता का दृश्यालेख उनके अभाव में अपूर्ण ही नहीं अविश्वसनीय भी लगेगा। इसलिए जगूड़ी को समकालीन कविता का अपरिहार्य हस्ताक्षर और धूमिल का वास्तविक उत्तराधिकारी कहा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन को दृष्टिगत रखते हुए मैं यह निः संकोच कह सकता हूँ कि साठोत्तरी कवियों में लीलाधर जगूड़ी का अपना एक अलग स्थान है। उनका काव्य उनके समकालीन कवियों से उन्हें पृथक करता है। जहाँ अपनी काव्रू–यात्रा के शुरूआत में जगूड़ी अपने समकालीन बहुचर्चित कवि धूमिल से प्रभावित दिखायी पड़ते हैं। वहीं अपनी काव्य–यात्रा के मध्य में वह अपनी पहचान एक परिपक्व और सुलझे हुए कवि के रूप में बनाते हैं। यहाँ आकर जगूड़ी की भाषा ज्यादा संयत तथा विचार और अनुभूति के धरातल पर ज्यादा संश्लिष्टता प्राप्त करती दिखायी देती है।

सन्दर्भ

1. बलदेव वंशी, समकालीन कविता, वैचारिक आयाम, पृ0 17
2. नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, पृ0 38
3. रघुवीर सहाय, लिखने का कारण, पृ0 26–27
4. अजित कुमार, कविता का जीवित संसार, पृ0 43
5. शुकदेव सिंह, धूमिल की कविताएँ, भूमिका
6. नरेंद्र मोहन, कविता की वैचारिक भूमिका, प्रस्तावना
7. श्याम परमार, अकविता और कला संदर्भ, पृ0 40
8. मदन गुलाटी, समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य, पृ0 91
9. जगदीश नारायणा श्रीवास्तव, समकालीन कविता पर एक बहस, पृ0 17
10. वही, पृ0 19
11. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, समकालीन सिद्धांत और साहित्य, पृ0 127
12. लीलाधर जगूड़ी, नाटक जारी है, फ्लैप से
13. सं0 लीलाधर जगूड़ी, लगभग जीवन, पृ0 7
14. वही
15. लीलाधर जगूड़ी, इस यात्रा में, पृ0 73–74
16. प्रभात त्रिपाठी, रचना के साथ, पृ0 128
17. लीलाधर जगूड़ी, बची हुई पृथ्वी, पृ0 80
18. वही, नाटक जारी हे, पृ0 61
19. वही, इस यात्रा में, पृ0 26
20. वहीं, नाटक जारी है, पृ0 11
21. वही, पृ0 107
22. वही, पृ0 109
23. वही, पृ0 120
24. लीलाधर जगूड़ी, बची हुई पृथ्वी, पृ0 52–53
25. परमानंद श्रीवास्तव, समकालीन कविता का व्याकरण, पृ0 86